ISSN : 3048-6203 Volume -2| Issue -1| Jan - Jun 2025

शोध भूमि
शिक्षा एवं शिक्षण शास्त्र विषय की पूर्व समीक्षित शोध पत्रिका
Page No. : 564-570

राजस्थान की लोक–कला

राखी सिंह राठौड़
शोध छात्र, विजुअल विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान
ई–मेल : rakhisinghrathore18@gmail.com
डॉ. मनोज टेलर
एसोसिएट प्रोफसर, विजुअल विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

सारांश

राजस्थान की लोक कला राज्य की समृद्ध सांस्कृतिक ऐतिहासिक और पारंपरिक जीवन शैली का एक जीवंत प्रतिबिंब है। यह कला पीढ़ी–दर–पीढ़ी सांस्कृतिक मूल्यों और पौराणिक आख्यानों को आगे बढ़ाने का माध्यम भी है। यह मानव सभ्यता के धार्मिक विश्वासों और आस्थाओं पर आधारित होती है। ये कलाएँ केवल सौन्दर्य का साधन नहीं, बल्कि ग्रामीण राजस्थान की आस्था, सामाजिक परम्पराओं और लोक कथाओं का जीवंत दस्तावेज है।

लोक कला किसी भी समाज की सांस्कृतिक आत्मा का दपर्ण होती है। इसमें चित्रकला, नृत्य, संगीत, हस्तशिल्प एवं रंग–बिरंगे मेरे तथा त्यौहारों का समावेश होता है। राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति इस लोक कला को एक विशिष्ट पहचान प्रदान करते हैं।

मुख्य शब्द– पौराणिक, लोक कला, सांस्कृतिक, आस्था।

प्रस्तावना

आजकल लोक शब्द के अनेक अर्थ समझे और किये जाते है। कुछ लोग लोक से अर्थ मानव के उस प्रकार के तब के से लगाते है जो सभ्यता के प्रभाव से बहुत कम प्रभावित हुआ हो और जिसकी वृत्तियाँ मौलिक रूप से आदिम और अपरिमार्जित हो। इस प्रकार के मानव बहुधा या तो आदिवासी समझे जाते है या वे लोग जिन्हें हम जंगली या गंवार कह सकते है।

कुछ लोग लोक का अर्थ मानव के उस प्रकार से लगाते हैं, जो गाँवों में निवास करते है और जिस पर बाहरी और आधुनिक सभ्यता का प्रभाव नहीं के बराबर है। यह मानव आदिम मानव से इस दृष्टि से भिन्न होते है कि गाँवों में रहते हुए भी उनकी वृत्तियाँ आदिम नहीं है। उसमें भी धर्म, समाज और संस्कृति के संस्कार सब विद्यमान रहते हैं और अपने आचार–विचार, रहन–सहन,

पहनाया, खान–पान आदि में ग्रामीण रहते हुए भी उस पर मानवी विकास के लक्षण स्पष्ट होते है। लोग लोक शब्द का अर्थ जनसाधारण से लगतो है चाहे वह गाँव का रहने वाला हो, चाहे शहर का विशेषता इतनी ही होती है कवह शिक्षा–दीक्षा, पहनावा, खान–पान, आचार–विचार संस्कार व्यवहार में उस देश की प्रतिनिधि संस्कृति का प्रतीक हो और देश के जन साधारण की वृत्तियों का मूर्त रूप हो।

लोक शब्द के तीनों पहलुओं को लेकर लोक–कला के भी विविध अर्थ आज हमारे देश में लगाये जा रहे है। ये तीन प्रकार के लोक नाटय लोक गीत, लोक चित्रकला, लोक कला, कौशल तथा अन्य लोक से संबंधित समझी जाने वाली कलाओं में पाये जाते हैं। आजादी से पूर्व लोक कला को कोई महत्व नहीं दिया गया था। हम लोग अपने देश की समस्याओं के निराकरण तथा विदेशी प्रभावों की बुराईयों में ऐसे ग्रस्त थे कि हम कला के इस सुन्दर पक्ष की ओर प्रवृत्त नहीं हुए। लोक संबंधी अन्य प्रवृत्तियों की ओर तो हमारा ध्यान गया, परन्तु लोक कला हमारी दृष्टि से ओझल ही रही। गाँवों की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक तथा स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं तो हमारा ध्यान खींचती रही और हम ग्राम सेवा, ग्रोमोद्धार, ग्रामोत्थान और ग्रामोद्योग की बाते तो बहुत करते रहे परन्तु ग्राम कला, विशेष करके ग्राम–गीत, ग्राम नृत्य, ग्राम–नाटय तथा ग्राम–चित्र हमारा ध्यान नहीं खींच सके। इसका मूल कारण स्पष्ट ही है। शहरी कला के जो भंयकर रूप सामंती प्रभावों के कारण हम देखते थे उसी ने सम्भवतः ग्राम्य कला की तरफ भी हमारी दृष्टि कुंठित कर दी। शहरी कला में जो विलासिता श्रृंगारिकता और मौज–मजे की बात प्रविष्ट दुई उसी से ग्रामकला की तरह से भी लोगों ने मुंह मोड़ा।

आजादी के बाद लोक कला का रूप एकाएक निखर गया। इसका मूल कारण यह है कि आजादी से पूर्व साधारणजन अनेक जातीय, साम्प्रदायिक तथा आर्थिक बंधन में बंधा हुआ था। शासनिक महत्व भले ही अंग्रेजो तथा सामंती राजाओं का रहा हो परन्तु बौद्धित नेतृत्व कुछ पश्चात्य सभ्यता से प्रभावित लोगा का था, जिसका ध्यान बहुधा उच्च स्तरीय कला, शिक्षा, वेशभूषा तथा जीवन स्तर पर ही था। लोक कला न केवल उनकी निगाह से ओझल हो गई वरन् उसे अवहेलना की दृष्टि से देखते थे। यही कारण था कि लोक कला आजादी से पूर्व प्रकाश में नहीं आ सकी। आजादी के बाद वह बौद्धिक नेतृत्व खत्म हुआ और जनतांत्रिक वातावरण में लोक कला को प्रकाश में आने का मौका मिल गया।

वैभव, शूरवीरता, रेगिस्तान, खूबसूरत अरावली की श्रृंखला और तालाओं की भूमि राजस्थान ऊबड़–खाबड़ जमीन और कठिन जलवायु ने राजस्थान के लोगों को साहसी और मजबूत बना दिया है।

अनेक साहस और कठोरता से निकली है। राजस्थान की रंगीनी और अद्वितीय लोक गाथाएं जिन्दगी और समानियत के लिए प्यार, पूरे राजस्थान में देखा जा सकता है।

बहादुर राजपूतों की इस भूमि में शूरवीरता, आध्यात्मिकता, समृद्ध लोक संस्कृति और यहाँ तक कि अंधविश्वास भी पूरी तरह धूल–मिल गया है। इनके कुछ क्षेत्र तो अभी भी परिवर्तन से अछूते है। लोक पुराने युग में ही जी रहे है।

ये वह मनुष्य समाज है जो अपनी परम्पराओं में प्रचलित रीति–रिवाज, रहन–सहन और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने से अशिक्षित कहलाता है। जहाँ व्याकरण के अनुशासन की

श्रृंखला नहीं वहाँ का प्राणी लय तथा ताल पर थिरकता है। लोक साहित्य अनेक वर्षों से चली आ रही सांस्कृतिक परम्परा आ वाहक होता है जो शास्त्र लोक के साथ नहीं जुड़ा है वह वृद्धि का छलावा है। कहा भी गया हैः– ''प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदशी भवेन्नरः'' जो लोक को स्वंय अपनी आँखों से देखता है, ज्ञानी है वर्तमान में हम लोक के प्रत्यक्ष दर्शन से विमुख होते जा रहे है।

लोककलाएँ प्रदर्शन धर्मी हो या उत्सव धर्मी लोककर्मी हो या ह्रदयमर्मी ये विश्वधर्मी है। लोककलाओं में प्रदर्शधर्मी लोककलाओं का नितान्त अलग कोई वर्ग नहीं है। ये तो सामूहिक ही है। भेद अगर दिख पड़ता है तो वह भेद छोटे–बड़े दायरे में अनेक फैलाय का, छोटे–बडे समूह से अनेक जुड़वों का है। अनुष्ठानिक कला रूप न तो अधिक संवेध होंगे न सर्व साधारण की रूचि ही उनमें हो सकती है किन्तु अनुष्ठानपरक और भिधकीय अगध संभावनाएं है। जीवन निरपेक्ष कदापि नहीं। उनकी स्थिति, अभिव्यक्ति और परिवर्ति मनुष्य के सामुदायिक और वैयाक्तिक जीवन में ही सम्भव है। एक सम्पन्न सांस्कृतिक जिन्दी की स्त्रोतस्विनियों, तृषाहारिणी लोक कलाओं के खो जाने का भय है जबकि जीवन गतिशील है तो यह स्थिति हमारे देश के जीवन में सभ्यता संस्कृति के एक मोड़ की सूचक है जहाँ अधिक दबाओं से हुये सामाजिक बदलावों का देश की आत्मा में रच–बसे सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के साथ संगम न हो सका। समन्यय न हो सका। लोककलाओं क पुररूद्धार की नहीं जीवन की बदली धूरियों पर उन्हें केन्द्रित करने जीवन के नये संगम स्थलों में उनका रौपा (ट्रांसप्लान्टेशन) लगाने की जरूरत है। सौन्दर्य को दृश्य रूप में प्रकट कर देना ही कला है। कला मनुष्य की सौन्दर्यकल्पना को साकार करती है। मनुष्य के मन में जो कुछ होता है, वही सौन्दर्यगुण के साथ कला रूप में व्यक्त होता है। दृश्य या अदृश्य स्थूल या सूक्ष्म वसतु, या भाव से संबंधित जब सौन्दर्यानुभूति साकार होती है तो उसकी अभिव्यंजना को कला कहते है और जब शास्त्रीय चेतना से शून्य, पंडित्य प्रदर्शन से सर्वधा दूर रहने वाला लोक समाज का कलाकार अपनी सौन्दर्यानुभूति को चित्र, संगीत, नृत्य आदि के माध्यम से व्यक्त करता है तो वह लोक कला कहलाती है। लोक कला के माध्यम से लोक संस्कृति का स्वरूप उजागर होता है उसमें लोक की सामाजिक धार्मिक एवं आध्यात्मिक वृत्ति का पत्ता चलता है। लोक कला का भी अपना महत्व है।

राजस्थान के जनजीवन में मांडनों का विशेष महत्व हैं ''मांडणों'' मांगलिक माने जाते है, चाहे विवाह हो या जन्मोत्सव, अनुष्ठान या त्यौहार, व्रत उपवास हो या देव प्रतिष्ठा। सभी शुभअवसरों पर माण्डणा मांडे जाते है। यहाँ कहावत भी प्रचलित है कि लड़का चाहे कुंवारा रह जाए परन्तु आंगन कभी कुंवारा नहीं रहना चाहिए इसलिए आंगन की लीपापोती करने बाद उसे खाली नहीं रहने दिया जाता है। आंगन को माण्डणा विहीन रखना अपशकुन समझा जाता है। अतः और कुछ नहीं तो साकिया ही मांड दिया जाता है। उत्सव या किसी मांगलिक अवसर पर तो नारियाँ बहुत रूचि से आंगन में सफेद खड़िया, गेरू पांडू से तरह–तरह के ''माण्डणें'' माण्डती है जैसे सावल के त्यौहार पर चौपड़, सात फूल, फूलड़ी, पाँच फूल आदि माण्ड देती है।

दीपावली के अवसर पर लिछमीजी रा पगल्या कलश नारियल, सूरज, साकिया, सोलह दीया चौक, हीड, रतुन, नोल्टी (नोन्ठी) बांधरमाल, चौक चक्कर फूलियो, कंवलो आदि पर माण्डणें मांडने का विधान है।

रंगों के त्यौहार होली के अवसर पर तो स्त्रियाँ चंग, बाजौट, खांडा, चौपड, चौक, चलाई, बिदुचौक, बीजणी, पंखे, घेरा, पगल्या, गोड्ल्या, गंद, दड़ी और चौखूंटा आदि माण्डणें माण्डकर ह्रदय के हर्षोल्लास को व्यक्त करती है।

गणगौर के उत्सव पर गौर का बेसणा

चेत्र नवरात्रि में पथवारी आदि माण्डे जाती है।

विवाह के अवसर पर माण्डणों में रथ, दोवेड़ पगल्या, बाजोट, चौक कठशकुंड (कल्ठशकुंड) कुंवल्श्ये, घेवर आदि माण्डे जाते है।

तीर्थ यात्रा पूर्ण कर सकुशल घर लौटता है तो उस खुशी में ''पुष्कर पेड़ी'' तथा ''पथवारी'' माण्डी जाती है।

मांगलिक अवसरों पर आंगन के माण्डणों के साथ–साथ घर के मुख्य द्वार, शयनकक्ष, अतिथि कक्ष इत्यादि को भी माण्डणों से सुसज्जित किया जाता है। इनको सफेद, लाल, पीले, नीले, हरे रंगों से विशेष आकर्षक बनाया जाता है। माण्डणों में त्रिकोण, चतुष्कोण, षष्टकोण, अष्टकोण, वृत्त आदि की आकृतियाँ बनाई जाती है। माण्डणों में स्वस्तिक मण्डन भी मांगलिक माना जाता है। यह गणपति का प्रतीकात्मक चिन्ह है। चार युग चार वर्ण, चर आश्रम स्वास्तिक के ही प्रतीक है।

- षटकोण लक्ष्मी का प्रती है।
- श्री चक्र विश्वरचना का प्रतीक है।
- सर्वतोभद्र या बावडी जलाशय रूप में मांगलिक है।
- देवताओं का यास मंदिर का भी प्रतीक माना जाता है।
- त्रिभुज और त्रिमूर्ति ब्रहम्मा, विष्णु और महेश का प्रतीक है।
- तीन गुण सत्व, रज एवं तमागुण का भी प्रतीक है।
- ज्ञान, इच्छा, क्रिया त्रिशक्ति का प्रती है।
- चतुष्कोण चारों दिशाओं का प्रतीक रूप है।

माण्डणें मात्र चित्र ही नहीं है बल्कि समग्र मानव चेतना के ज्योति रूप में है इनमें हमारी सांस्कृतिक आदर्शन निहित है। लोक मंगल की भावना विद्यमान है। सुख, सम्पदा, आयोग्या, सुहाग, धन–धान्य प्रदान करने वाले यह माण्डणे ज्ञान का प्रकाश फैलाते है।

माण्डणा– मांगलिक अवसरों पर विभिन्न रंगों के माध्यम से ऊकेरी गई कलात्मक आकृत्तियाँ माण्डणे कहलाती है।

पगल्या– दीपावली के समय लक्ष्मी पूजन से पूर्व देवी के घर में आगमन के रूप में पगल्ये बनाए जाते है।

ताम– विवाह के समय लग्न (लगन मण्डप में तैयार किया गया माण्डणा) ताम कहलाता है। यह दाम्पत्य जीवन के खुशहाली का प्रतीक माना जाता है।

चौकड़ी– होली के अवसर पर बनाए गये माण्डणे जिसमें चार कोण होते है जो चारों दिशाओं में खुशहाली का प्रतीक माने जाते है।

छापा– मांगलिक अवसरों पर महिलाओं द्वारा घर की चौखट पर कुमकुम तथा हल्दी से बनाए गये हाथों के निशान छापे कहलाते है।

मोरडी माण्डणा– दक्षिणी तथा पूर्वी राजस्थान में मीणा जनजाति की महिलाओं द्वारा घरों में बनाई गई मोर की आकृति मोरड़ी माण्डणा कहलाती है। मोर को सुन्दरता खुशहाली तथा समृद्धि का प्रतीक माना जाता है।

स्वास्तिक, सतिया, सांखिया– उत्तरी व पश्चिम राजस्थान में सांख्या तथा पूर्वी राजस्थान में सातिया कहते है। मांगलिक अवसरों पर ब्रह्ममणों के द्वारा मंत्रोचर से पूर्व पूजा के स्थान पर स्वास्तिक का अंकन किया जाता है।

बेताण– लकड़ी से निर्मित सिंहासन जिस पर ठाकुर जी की मूर्ति को श्रृंगारित करके बैठाया जाता है तथा देव झूलनी एकादशी (भाद्र शुक्ल एकादशी) के दिन किसी तालाब के किनारे ले जाकर नहलाया जाता है।

चौपड़ा– लकड़ी से निर्मित चार अथवा छः खाने युक्त मसाले रखने का पात्र है। जिसे पश्चिमी राजस्थान में हटड़ी कहते है।

तोरण– विवाह के अवसर पर वर द्वार वधू के घर के मुख्य प्रवेश द्वार पर जो लकड़ी की कलात्मक आकृति लटकाई जाती है उसे तौरण कहते है। तौरण पर सामान्यतः मयूर की आकृति अंकित होती है। तौरण को वर द्वारा तलवार से अथवा हरी टहनी से स्पर्श करवाया जाता है। मारना शौर्य अथव विजय का प्रतीक माना जाता है।

बाजौट– लकड़ी की चौकी अथवा शाट जिसे भोजन के समय अथवा पूजा के समय प्रयुक्त किया जाता है। विवाह के समय वर व वधू को बाजोट पर बैठाने की परम्परा है।

खण्डा– लकड़ी से निर्मित तलवारनुमा आकृति जिसका उपयोग रामलीला नाटक में तलवार के स्थान पर किया जाता है।

राजस्थान में होली के अवसर पर कारीगर द्वारा गाँव में खाण्डे बांटने की परम्परा है।

गुलाबी रंग से रंगा खाण्डा शौर्य का प्रतीक माना जाता है। पूर्वी राजस्थान में दुल्हन द्वारा दूल्हे के घर खाण्डे भेजने की परम्परा है।

देवरा– ग्रामीण क्षेत्रों में लोक देवताओं के चबूतरेनुमा स्थान ष्देवराष कहलाता है।

पथवारी– ग्रामीण क्षेत्रों में गाँव के बाहर रास्त में मिट्टी से बनाया गया स्थान जिसे तीर्थ यात्रा पर जाने से पूर्व पूजा जाता है।

सांझी/संध्या– ग्रामीण क्षेत्रों में कुंवारी कन्याओं द्वारा अच्छे वर की कामना हेतु दीवार पर उकेरे गये रंगीन भित्ति चित्र को सांझी कहते है।

सांझी पूर्व श्राद्ध पक्ष में दशहरे तक मनाया जाता है। केले की सांझी के लिये श्री नाथ मंदिर (नाथद्वारा) प्रसिद्ध है। उदयपुर का मछन्द नाथ मंदिर सांझी का मंदिर कहलाता है।

पाने– कागज पर लोकदेवता अथवा देवी का चित्रण पाने कहलाते है।

हीड़– पूर्वी क्षेत्र में दीपावली के अवसर पर बच्चे मिट्टी से निर्मित एक पात्र जिसमें बिनोले जलते हरते है। बिनोले को लेकर घेर–घर घूमते है इसे खुशहाली का प्रतीक माना जाता है।

वील– राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में छोटी वस्तुओं को संग्रहित करके रखने के लिये मिट्टी से बनाई गई महलनुमा आकृति वील कहलाती है।

मेंहदी महावर– मांगलिक अवसरों पर महिलाओं तथा युवतियों द्वारा हाथों पैरों पर मेंहदी लगाने की परम्परा है। मेंहदी को सुहाग का प्रतीक माना जाता है। राजस्थान में सोजत नगर की मेंहदी प्रसिद्ध है। बुजुर्ग महिलाओं तथा बच्चियाँ कलात्मक मेंहदी उकेरने की बजाय हथेली पर पाँच बडे आकार की बिन्दया बनाती है जिसे ''पांचोटा'' कहा जाता है।

बतेवड़े– गोबर से निर्मित सूखे उपलों की सुरक्षित रखने के लिये बनाये गई आकृति बटेवेड़ कहलाती है।

चिकोरा–चिकोटा– पश्चिमी राजस्थान में मिट्टी से बनाई गए पात्र जिसमें मांगलिक अवसरों पर बच्चों द्वारा तेल इकट्ठा किया जाता है।

मोण/मूण– पश्चिमी राजस्थान में मिट्टी से निर्मित मटके जिनका मुंह छोटा/संकरा होता है इनका उपयोग पानी के लिए किया जाता है, मोण कहलाता है।

गोदना– गरासिया जनजाति की मुख्य प्रथा है जिसमें सूई अथवा बबूल के कांटे से मानव शरीर पर विभिन्न आकृत्तियाँ उकेरी जाती है। इसमें घाव को कोयला के चूर्ण अथवा खेजड़ी की पत्तियों के पाउडरों से भरा जाता है। सुखने के बाद आकृत्ति हरे रंग में उभर जाती है।

ओका–नोका गुणा– ग्रामीण क्षेत्रों में गोबर से बनाई गई कलाकृति जिसको चेचक के समय पूजा जाता है।

मथरेणा कला– धार्मिक स्थनों पर देवी–देवताओं का चित्रा बनाना मथरेणा कला कहलाती है।

बेवाण– इसे देवी विमान या मिनी वुढऐंचर टेपल भी कहते है। यह लकड़ी का बना छोटा मंदिर होता जलझूलनी एकादशी पर बेवाण निकाला जाता है।

टेराकोटा कला– बिना सांचे का उपयोग किए मिट्टी की मूर्तियाँ व खिलौने बनाना टेराकोटा कला कहलाती है। जिसका प्रमुख क्षेत्र मोलेला गाँव, नाथद्वारा (राजसमन्द) तथा प्रमुख कलाकार मोहनलाल कुमार है। टेराकोटा में भौगोलिक चिन्हीकरण प्राप्त है।

यह दो प्रकार का होता है।

1. कागजी टेराकोटा
2. सुनहरी टेराकोटा

कागजी टेराकोटा– इसमें पतले बर्तनों पर चित्रकारी की जाती है जो अलवर का प्रसिद्ध है।

सुनहरी टेराकोटा– इसमें बर्तनों पर सुनहरे रंग की चित्रकाली होती है जो बीकानेर का प्रसिद्ध है।

पोमचा– पोमचा महना जाता है। पुत्र के जन्म पर माता पीले रंग पोपचा पहनती है जबकि पुत्री के जन्म पर बैंगनी का पोमचा पहना जाता है।

लहरिया– लहरिया कई पेकार के होते है जैसे कोहनीदार, जालीदार, जालदार, नगीना पल्लु, खत, पंचलड़ी पाटली आदि

डाबू

लाडू

पतंग

चोखाना

बंधेज द्वारा पांच रंगों में रंगा गया साफा बावरा तथा दो रंगों में रंगा गया साफा मोठरा कहलाता है।

राजस्थान में सबसे प्रसिद्ध मूर्तियाँ

काले पत्थर की मूर्तियाँ तलवाडा (बांसवाड़ा)

लाल पत्थर की मूतियाँ– थानागाजी (अलवर)

संगमरमर की मूर्तियाँ– जयपुर पिण्डवाड़ा (सिरोही)

जस्ते की मूतियाँ– जोधपुर

मामाजी के घोड़े– हरजी (जालोर)

रामदेवजी के घोड़े– पोकरण (जैसलमेर)

कलाबतु कारचान, जरदोजी– जयपुर

अंततः– भारतीय लोक कला और जनसंचार के अंतर्गत वाद्य यंत्र, लोक संगीत और नाटय का हवाला देना भी आवश्यक हैं। भारत की संस्कृति इतिहास की अमूल्य धरोहर है। इतिहास का अमूल्य अंग है। बींसवी सदी के पूर्वार्द्ध तक भारत में लोगों का मनोरंजन का साधन नाटय व नृत्य रह गये थे। रासलीला जैसे नाटकों के अतिरिक्त प्रदेश में ख्याल, रासधारी, नृत्य, भवाई, ढोलामारू, तुर्रा कलंगी या माच तथा आदिवासी गवरी या गौर नृत्य नाटक, घूमर अग्निनृत्य, कोटा का चकड़ी नृत्य डीडवाना पोकरण के तेराताली नृत्य, मारवाडा की कच्ची घोड़ी का नृत्य, पाबुजी की फड़ तथा कठपुतली प्रदर्शन के नाम उल्लेखनीय है। पाबूजी की फड चित्रांकित पर्दे के सहारे प्रदर्शनात्मक विधि द्वारा गाया जाने वालो गेय नाटक है। लोक बादणे में नगाढा ढोल–ढोलक, मादल, रावण, हत्था, पूंगी बसंली, सारंगी, तदूरा, तासा, थाली झांस पथ्वार तथा खड़ताल आदि।

संदर्भ सूची–

1. सायर, देवीलाल वर्मा रामगींडा, 2018, राजस्थानी लोकनृत्य, भारतीय लोककला मण्डल पंचशील, उदयपुर राजस्थान 313001 एः पृ.सं. 5 से 9
2. आहूजा, आर डी, 2002,2014, राजस्थान लोक संस्कृति और साहित्य राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत नेहरू भवन–5 इंस्टीटयूशन एरिया फेज–11, बसंत कुंज, नई दिल्ली–110070 द्वारा प्रकाशित (पृ.सं. 1 से 2)
3. डॉ. देवरानी हेमा, 2016 राजस्थानी और गढ़वाली लोकगीतों का तुलनात्मक अध्ययन, प्रतीक्षा पब्लिकेशंस 704, (बेसमेन्ट) बर्फ खाना राजापार्क, जयपुर–302004 राजस्थान (पृ. सं. 1 से 5)
4. डॉ. शर्मा मालती, 2016, परम्परा का लोक, आर्यावर्त संस्कृति संस्थान डी 48, गली नं ३ए, दयालपुर, करावलनगर रोड, दिल्ली–110094 (पृ.सं. 29 से 52)
5. डॉ, कल्ला नंदलाल, 2000, राजस्थानी लोक साहित्य एवं संस्कृति सुदर्शन कम्प्यूटर सिस्टम जोधपुर (पृ.सं. 115 से 126)
6. https://www-rajasthangan-com
7. https://www-aliscience-in
8. hindi.rajasthandirect.com